# अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी मोह

**प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,**
**पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान**

प्रारब्ध और उदय आयुष्य कर्म के अधीन है। आयुष्य कर्म पूर्व निर्धारित रहता है। आयुष्य कर्म से ही जीवन संचालित होता है। आयुष्य कर्म के नष्ट होने पर जीव की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु का अर्थ है आत्मा का शरीर से अलग होना। शरीर पंचतत्वों से बना हुआ एक भौतिक पिण्ड है। आत्मा के कारण शरीर में संवेदना रहती है। हमारे जीवन में आयु, कर्म, धन–दौलत, विद्या और निधन ये पांच पूर्व निर्धारित रहते हैं। इसीलिए कहा गया है–

आयुः कर्म च वित्तं च, विद्या निधनमेव च।
पंच येतानि सृज्यन्ते, गर्भस्थस्यैव देहिनः।।

यह सब कुदरत के कानून के अधीन रहता है। इसमें मनुष्य की शक्ति काम नहीं करती। कुदरत, कुदरत की रचना और कुदरत के कानून के अनुसार सब घटनाएं घटती हैं। द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव और नीयति के अनुसार सब कुछ होता रहता है। पंचभूतों के ये सब कार्य हैं। व्यक्ति परतंत्र है। मन, वचन, काया और इससे जुड़ी हर प्रवृत्ति कुदरत की रचना के अनुसार कार्य करती है।

कर्म मुख्यतः दो प्रकार के है– घाती कर्म और अघाती कर्म। घाती कर्म आत्मा के स्वभावगत गुणों को नुकसान पहुंचाता है और अघाती कर्म वे कर्म हैं जो आत्मा के स्वाभाविक गुणों को नष्ट नहीं करते किन्तु बंधन के कारण होते हैं। चाहे लोह की श्रृंखला हो या स्वर्ण की दोनों से बंधन होता है। अतः जब तक काम, क्रोध, मद, लोभ जैसे कषाय आत्मा के साथ रहेंगे बंधन होगा ही क्योंकि इससे आत्मा में कर्त्ताभाव जागृत हो जाता है। बंधन का कारण कर्त्ताभाव है। मैं और मेरा अहंकार का कर्त्ताभाव है। दार्शनिक दृष्टि से यदि हम चिंतन करें तो बंधन और मुक्ति जीव के लिए है। कर्मों का बंधना बन्धन है। जो बंधे या जिसके द्वारा बांधा जाये या बन्धन मात्र को बन्ध कहते हैं। कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण

करता है, वह बन्ध हैं। कर्म प्रदेशों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना, बन्ध है। मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आए हुए कर्म पुद्गलों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। जैसे बेड़ी आदि से बंधा हुआ प्राणी परतन्त्र हो जाता है और इच्छानुसार देशादि में नहीं आ–जा सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा परतन्त्र होकर अपना इष्ट विकास नहीं कर पाता। अनेक प्रकार के शरीर और मानस दुःखों से दुःखी होता है। राग–द्वेषादि के निमित्त से जीव के साथ पौद्गलिक कर्मों का बन्ध निरन्तर होता है। जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कडुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की क्या प्रकृति है? अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। जीव के प्रदेशों की उथल–पुथल को अस्थिति तथा उथल–पुथल न होने को स्थिति कहते हैं। जिसका जो स्वभाव है, उससे च्युत न होना स्थिति है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है। विविध प्रकार के पाक अर्थात् फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है। शुभाशुभ कर्म की निर्जरा के समय सुख–दुःख रूप फल देने की शक्ति वाला अनुभाग बन्ध है। कर्म रूप से परिणत पुद्गल स्कन्धों का परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है। दो के बिना बन्ध नहीं होता। एक हाथ से ताली नहीं बज सकती, उसी प्रकार बन्ध तत्त्व भी एक के बीच में नहीं हो सकता। सांसारिक जो विषय–सामग्री है वह, और उसका जो भोक्ता है आत्मा ये दोनों संयोग होते ही बन्ध हो जाते हैं।

जीव के द्वारा कर्म पुद्गलों के ग्रहण  का क्षीर–नीर की भांति परस्पर आश्लेष होता है, उसे बन्ध कहा जाता है। वह प्रवाहरूप से अनादि और जो भिन्न–भिन्न कर्म बंधते रहते हैं, उनकी अपेक्षा सादि है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति, ये सब कर्मों के आने के द्वार होने से आस्रव हैं। इनसे विपरीत सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, मोह व कषायहीन शुद्धात्म परिणति तथा मन, वचन, काय के व्यापार की निवृत्ति ये सब नवीन कर्मों के निरोध के हेतु होने से संवर हैं। आस्रव का निरोध करना ही संवर है। जिस कषाय के उदय

से जीव देश विरति रूप थोड़ा सा भी प्रत्याख्यान–त्याग नहीं कर सकता उसे अप्रत्याख्यान मोह कहते हैं। यह कषाय श्रावक धर्म की प्राप्ति नहीं होने देता। जिसके उदय से सर्वविरति रूप प्रत्याख्यान अर्थात् महाव्रत रूप की प्राप्ति नहीं होती वह प्रत्याख्यानावरण कषाय है। सूखे तालाब आदि में जो दरार हो जाती है वह वृष्टि होने से पुनः मिल जाती है। उसी प्रकार जो क्रोध विशेष से शान्त होता है उसे अप्रत्याख्यान क्रोध कहते हैं। बालू रेत में खींची हुई लकीर जैसे हवा से थोड़ी देर में हवा से भर जाती है उसी प्रकार जो क्रोध साधारण उपायों से शान्त हो जाता है उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते हैं। जैसे हड्डी का खम्भा अनेक कठिन उपायों से झुकता है उसी प्रकार जो मान अति परिश्रम करने से दूर होता है वह अप्रत्याख्यान मान है। इस प्रकार अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी मोह जीव को अज्ञान में डाले रहते हैं।